the Central legislative power been given ...

उत्तर:

संघ और राज्यों के बीच विधायी सम्बन्ध
(Legislative relation between the Union and the States)

संघ और राज्यों के बीच विधायी शक्तियों का विभाजन दो दृष्टियों से किया गया है–

(1) विधान के विस्तार क्षेत्र की दृष्टि से,

(2) विधान के विषयों की दृष्टि से।

1. विधान के विस्तार क्षेत्र की दृष्टि से
(With respect to territory)

अनु० 245 यह उपबन्धित करता है कि इस संविधान के उपबन्धों के अधीन रहते हुए संसद भारत के सम्पूर्ण राज्य क्षेत्र या उसके किसी भाग के लिए विधि बना सकेगी तथा किसी राज्य का विधान मण्डल उस सम्पूर्ण राज्य के अलावा उसके किसी भाग के लिए विधि बना सकेगा। खण्ड (2) यह उपबन्धित करता है कि संसद् द्वारा निर्मित कोई विधि इस कारण से अमान्य नहीं समझी जायेगी कि वह भारत के राजक्षेत्र से बाहर भी लागू होती है।

राज्य क्षेत्रीय सम्बन्ध का सिद्धान्त (Theory of Territorial Nexus):- उपर्युक्त सिद्धान्त के अन्तर्गत अनु० 245 (1) के अनुसार संसद संपूर्ण भारतीय राज्य क्षेत्र का उसके किसी भाग के लिए और राज्य के विधान मण्डल अपने–अपने राज्यों के राज्य–क्षेत्रों या उनके किन्हीं भागों के लिये कानून बना सकते हैं और संसद द्वारा बनाये गये कानूनों के सम्बन्ध में विशेष रूप से और स्पष्ट रूप से अनु० 245 (2) यह उपबन्धित करता है कि उन्हें इस आधार पर अमान्य नहीं समझा जायगा कि वे भारतीय राज्य–क्षेत्र से बाहर लागू होते हैं।

'**स्टेट ऑफ बाम्बे बनाम आर० एम० डी० सी०** AIR 1957 S.C. 799 के मामलें में बम्बई राज्य को उसके एक अधिनियम के अन्तर्गत लाटरी और इनामी विज्ञापनों पर करारोपण का अधिकार प्राप्त था। अतः यह कर बंगलौर से प्रकाशित उत्तरवादी के उस समाचार पत्र पर भी लगाया गया, जिसका बम्बई राज्य में पर्याप्त प्रसारण था और जिसके द्वारा वह इनामी प्रतियोगिताएँ चलाता था। न्यायालय ने निर्णय दिया कि समाचार पत्र पर कर लगाने के लियेउचित क्षेत्रिक सम्बन्ध मौजूद था। क्षेत्रिक सम्बन्ध के मामले में दो बातें आवश्यक हैं–

(1) विषय–वस्तु में और उस राज्य में जो उस पर कर लगाना चाहता है वास्तविक सम्बन्ध हो, भ्रामक सम्बन्ध नहीं और,

(Delegated legislation)

उत्तर:

1. तत्व और सार का सिद्धान्त
(Doctrine of Pith and Substance)

अनु० 246 ने संघ राज्यों के बीच विधायी शक्तियों का विभाजन करने की दृष्टि से विधायन सम्बन्धी विभिन्न विषयों को तीन अलग–अलग सूचियों में निर्दिष्ट किया है। ये सूचियाँ हैं–

(1) संघ–सूची, (Union list)

(2) राज्य सूची (State List) और

(3) समवर्ती–सूची (Concurrent List)।

संघ सूची में उल्लिखित विषयों पर केन्द्र को, और राज्य–सूची में उल्लिखित विषयों पर राज्यों को, कानून बनाने की अनन्य शक्ति इस अनुच्छेद द्वारा प्रदान की गई है; जबकि समवर्ती सूची के विषयों पर केन्द्र और राज्य, दोनों को, कानून बनाने की शक्ति प्रदान की गई है। इसके बावजूद यह अनुच्छेद केन्द्रीय कानून को सर्वोच्चता प्रदान करता है।

अनु० 246 के उपबन्धों को ध्यान में रखते हुए न्यायालय 'तत्व और सार का सिद्धान्त' उस समय लागू करते हैं जब तक विधानमण्डल द्वारा बनाया गया कोई कानून दूसरे विधानमण्डल के विधायी विस्तार–क्षेत्र का भी अतिक्रमण करता है या करने लगता है। उस समय इस बात का निर्धारण करने के लिए कि ऐसा चादग्रस्त कानून उसे बनाने वाले विधान मण्डल को विधायी शक्ति के अधीन है या नहीं? न्यायालय इस सिद्धान्त के आधार पर यह निर्णय करते हैं कि यदि वह कानून, सारवान रूप से, या उसका वास्तविक उद्देश्य, ऐसे विषय से सम्बन्धित है, जिस पर वह विधान मण्डल कानून बनाने में अक्षम है, तो उसे मान्य घोषित किया जायगा, भले ही वह दूसरे विधान मण्डल के विधायी क्षेत्र में आने वाले विषय पर आनुषंगिक रूप से अतिक्रमण करता हो। उस कानून की वास्तविकता, प्रकृति और स्वरूप का पता लगाने के लिये इस सिद्धान्त के अन्तर्गत पूरे अधिनियम पर विचार किया जाता है और उसके उद्देश्य और विस्तार तथा उसके उपबन्धों के प्रभाव की जाँच की जाती है।

इस सिद्धांत को सबसे पहले प्रिवी कॉसिल ने **'प्रफुल्ल कुमार बनाम खुलना बैंक'** AIR 1947, P.C. 60 के मामले में लागू किया था। इस मामले में बंगाल विधान मण्डल ने ऋण का व्यापार–नियंत्रण करने के लिए बंगाल साहूकारी अधिनियम (मनी लेन्डर्स ऐक्ट) 1940 पास किया था। इस अधिनियम ने बंगाल प्रांत में ऋण पर ब्याज–दर की एक निश्चित सीमा नियत कर दी थी, जिससे

से नहीं; इसीलिए वह संवैधानिक है।

2. छद्म विधायन का सिद्धान्त
(Doctrine of colourable legislation)

अनु० 246 के अन्तर्गत विधायी शक्तियों का विभाजन केन्द्र और राज्यों के बीच कियागया है, उसके अन्तर्गत ही किसी विधायिका ने कार्य किया है या उसके बाहर? ऐसा प्रश्न तब उठता है जब कोई विधायिका किसी कानून को बनाने में ऊपरी तौर से अपनी शक्तियों के अन्दर कार्य करती हुई दिखाई देती है; किन्तु यथार्थतः या सारतः वह संवैधानिक सीमाओं का अतिक्रमण कर जाती है।

इस प्रकार का अतिक्रमण प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष हो सकता है। ऐसे परोक्ष विधायन को छद्म विधायन कहते हैं और ऐसे मामलों में अधिनियम का सार (substance) महत्वपूर्ण होता है। उसका बाह्य रूप या आकृति (form) गौण होता है। जब किसी विधान की विषय–वस्तु सारतः उस विधान को बनाने वाले विधान मण्डल की शक्ति से बाहर होती है; तब उसका बाह्य रूप उसे न्यायालय द्वारा अमान्य घोषित किये जाने से नहीं बचा सकता है। कोई भी विधान मण्डल कोई परोक्ष ढंग अपनाकर संवैधानिक सीमाओं का अतिक्रमण नहीं कर सकता है।

'आर० एस० जोशी बनाम अजित मिल्स लि० AIR 1977 S.C. 1279 के मामलें में उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश कृष्ण अय्यर ने छद्म विधायन की परिभाषा करते हुए कहा है कि छद्मता से तात्पर्य अक्षमता से है। कोई वस्तु तब छद्म होती है जब वह वास्तव में उस रूप में नहीं होती है, जिस रूप में वह प्रस्तुत की जाती है। छद्मता में दुर्भावना का तत्व नहीं होता है।

इस सिद्धांत का आधार यह होता है कि जो काम विधान मण्डल प्रत्यक्ष रूप से नहीं कर सकता है उसे वह अप्रत्यक्ष रूप से भी नहीं कर सकता है। इसलिए जब वह किसी विषय पर कानून बनाने की शक्ति संविधान के अन्तर्गत प्रत्यक्ष रूप से नहीं रखता है, तब किसी अप्रत्यक्ष ढंग से भी वह ऐसा कानून नहीं बना सकेगा।